International Organization of Research & Development (IORD)
ISSN: 2348-0831
Vol 12 Issue 02 | 2025

बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था में सामूहिक सुरक्षा की प्रासंगिकताः रूस–यूक्रेन और पश्चिम एशिया संकट के संदर्भ में

दरवेश (शोधार्थी), डॉ. सुशीला बेदी दुबे (शोध निदेशक)
राजनिति विज्ञान विभाग,श्री जगदीश प्रसाद झाबरमल टिबरेवाला विश्वविद्यालय, चूड़ेला, झुंझुनूं

DOI: https://www.doi.org/10.5281/zenodo.17818315

सारांश

इक्कीसवीं शताब्दी की अंतरराष्ट्रीय राजनीति एक गहन संक्रमण काल से गुजर रही है, जहाँ वैश्विक शक्ति–संरचना निरंतर परिवर्तनशील होती जा रही है। शीत युद्ध के बाद विकसित हुई एकध्रुवीय व्यवस्था अब धीरे–धीरे बहुध्रुवीय स्वरूप ग्रहण कर रही है, जिसमें अनेक क्षेत्रीय एवं वैश्विक शक्तियाँ निर्णायक भूमिका निभाने लगी हैं। इस बदलते परिदृश्य ने अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा से जुड़ी अवधारणाओं, विशेषतः सामूहिक सुरक्षा की उपयोगिता और प्रभावशीलता पर नए सिरे से विचार करने की आवश्यकता उत्पन्न की है।

प्रस्तुत लेख बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था की पृष्ठभूमि में सामूहिक सुरक्षा की प्रासंगिकता का विश्लेषण करता है तथा रूस–यूक्रेन संघर्ष और पश्चिम एशिया में जारी अस्थिरता को इसके प्रमुख परीक्षण–क्षेत्र के रूप में प्रस्तुत करता है। लेख का तर्क है कि सामूहिक सुरक्षा का पारंपरिक ढाँचा वर्तमान वैश्विक यथार्थ के अनुरूप स्वयं को पूरी तरह ढालने में असफल रहा है। शक्ति–संतुलन, भू–राजनीतिक प्रतिस्पर्धा और रणनीतिक हितों की प्राथमिकता ने सामूहिक प्रतिक्रिया को सीमित और कई बार निष्प्रभावी बना दिया है। रूस–यूक्रेन संकट यह दर्शाता है कि जब संघर्ष में शामिल शक्तियाँ स्वयं अंतरराष्ट्रीय निर्णय–प्रक्रिया में प्रभावशाली भूमिका रखती हैं, तब सामूहिक सुरक्षा तंत्र निष्पक्ष हस्तक्षेप करने में सक्षम नहीं रह जाता। इसी प्रकार पश्चिम एशिया में लंबे समय से चले आ रहे संघर्ष यह संकेत देते हैं कि क्षेत्रीय समीकरण और बाहरी हस्तक्षेप सामूहिक सुरक्षा की अवधारणा को कमजोर कर देते हैं।

लेख का निष्कर्ष यह प्रतिपादित करता है कि बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था में सामूहिक सुरक्षा न तो पूरी तरह अप्रासंगिक हो गई है और न ही अपने परंपरागत स्वरूप में प्रभावी बनी रह सकती है। वर्तमान वैश्विक चुनौतियों के संदर्भ में सामूहिक सुरक्षा की पुनर्व्याख्या, संस्थागत सुधार और सहयोग के नए ढाँचों की आवश्यकता है, ताकि यह अवधारणा बदलती विश्व व्यवस्था में सार्थक भूमिका निभा सके।

1 वैश्विक शक्ति–संरचना का रूपांतरणः एकध्रुवीयता से बहुध्रुवीयता की ओर

शीत युद्ध की समाप्ति के बाद अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था जिस दिशा में अग्रसर हुई थी, उसमें एक प्रमुख शक्ति के प्रभुत्व को केंद्रीय स्थान प्राप्त था। किंतु समय के साथ आर्थिक विकास, सैनिक क्षमता, तकनीकी विस्तार और कूटनीतिक सक्रियता के प्रसार ने इस संरचना को चुनौती दी। आज विश्व राजनीति में शक्ति का केंद्रीकरण कमजोर पड़ रहा है और अनेक क्षेत्रीय तथा वैश्विक शक्ति–केंद्र उभरते हुए स्पष्ट दिखाई देते हैं। इस परिवर्तन ने अंतरराष्ट्रीय संबंधों को अधिक जटिल और बहुपक्षीय बना दिया है।

बहुध्रुवीय व्यवस्था में निर्णय–निर्माण की प्रक्रिया किसी एक शक्ति की इच्छा पर आधारित नहीं रह जाती। इसके स्थान पर विभिन्न राष्ट्र अपने–अपने हितों, सुरक्षा चिंताओं और रणनीतिक प्राथमिकताओं के आधार पर भूमिका निभाते हैं। इस स्थिति में सहयोग और प्रतिस्पर्धा समानांतर रूप से कार्य करते हैं, जिससे न तो पूर्ण स्थिरता संभव होती है और न ही पूर्ण नियंत्रण। परिणामस्वरूप, वैश्विक शासन और सुरक्षा संबंधी व्यवस्थाएँ निरंतर दबाव और पुनर्संतुलन की अवस्था में बनी रहती हैं।

यह रूपांतरण सुरक्षा की अवधारणा को भी प्रभावित करता है। पारंपरिक सैन्य खतरों के साथ–साथ ऊर्जा आपूर्ति, भूराजनैतिक प्रभाव क्षेत्र, आर्थिक प्रतिबंध और क्षेत्रीय संघर्ष सुरक्षा के नए आयाम बन गए हैं। ऐसी बहुआयामी चुनौतियों के सामने सामूहिक प्रतिक्रिया विकसित करना कठिन हो जाता है, क्योंकि विभिन्न शक्तियाँ संकट को अलग–अलग दृष्टिकोण से देखती हैं।

अतः एकध्रुवीयता से बहुध्रुवीयता की यह यात्रा केवल शक्ति के पुनर्वितरण की कहानी नहीं है, बल्कि यह अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा व्यवस्था की कार्यप्रणाली में मूलभूत परिवर्तन का संकेत भी देती है। इसी परिवर्तित संदर्भ में सामूहिक सुरक्षा की अवधारणा को समझना और उसकी प्रासंगिकता का आकलन करना आवश्यक हो जाता है।

2 सामूहिक सुरक्षाः आदर्श अवधारणा और व्यवहारिक वास्तविकता के बीच विरोधाभास

सामूहिक सुरक्षा की संकल्पना मूलतः इस विश्वास पर आधारित रही है कि अंतरराष्ट्रीय शांति की रक्षा साझा उत्तरदायित्व के माध्यम से ही संभव है। इस दृष्टिकोण के अनुसार किसी एक राज्य के विरुद्ध आक्रामकता सम्पूर्ण अंतरराष्ट्रीय समुदाय के लिए चुनौती मानी जाती है, और सभी राष्ट्र मिलकर ऐसे कृत्य का विरोध करते हैं। सैद्धांतिक स्तर पर यह अवधारणा वैश्विक संघर्षों को रोकने और शक्ति के दुरुपयोग को नियंत्रित करने का आश्वासन देती है।

किन्तु व्यवहारिक राजनीति में यह आदर्श अनेक सीमाओं से घिरा हुआ दिखाई देता है। राष्ट्रों की विदेश नीतियाँ नैतिक प्रतिबद्धताओं की अपेक्षा अधिकतर राष्ट्रीय हितों, रणनीतिक समीकरणों और शक्ति संतुलन से संचालित होती हैं। ऐसी स्थिति में सामूहिक प्रतिक्रिया अक्सर चयनात्मक बन जाती हैकृकुछ संघर्षों पर तीव्र प्रतिक्रिया होती है, जबकि अन्य संकट उपेक्षा का शिकार हो जाते हैं। यह असमानता सामूहिक सुरक्षा की निष्पक्षता पर प्रश्न उठाती है।

बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था में यह विरोधाभास और अधिक गहरा हो जाता है। जब अनेक शक्तियाँ समान स्तर पर प्रभावशाली होती हैं, तब साझा कार्रवाई की दिशा तय करना कठिन हो जाता है। किसी संकट की व्याख्या अलग–अलग राष्ट्र भिन्न दृष्टिकोण से करते हैं, जिसके कारण सहमति बनने में विलंब होता है अथवा सहमति बन ही नहीं पाती। परिणामस्वरूप सामूहिक सुरक्षा का तंत्र निष्क्रिय या अल्पप्रभावी प्रतीत होता है।

इस प्रकार सामूहिक सुरक्षा एक ऐसे आदर्श के रूप में उभरती है, जो नैतिक रूप से आकर्षक तो है, किंतु व्यावहारिक राजनीति में लगातार समझौते और सीमाओं के अधीन रहता है। इसी अंतर ने समकालीन वैश्विक संकटों में इसकी प्रासंगिकता पर नए प्रश्न खड़े किए हैं।

3 अंतरराष्ट्रीय संस्थाएँ और बहुध्रुवीय दबावः सामूहिक निर्णय की सीमाएँ

अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाए रखने के उद्देश्य से गठित संस्थाओं को लंबे समय तक सामूहिक सुरक्षा का आधार माना जाता रहा है। इन संस्थाओं से यह अपेक्षा की जाती है कि वे वैश्विक संकटों के समय निष्पक्ष, त्वरित और प्रभावी निर्णय लेकर संघर्ष को नियंत्रित करें। किंतु बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था के उभार ने इन संस्थाओं की कार्यक्षमता पर गहरा दबाव उत्पन्न कर दिया है, जिससे उनकी भूमिका निरंतर प्रश्नों के घेरे में आती जा रही है।

बहुध्रुवीय व्यवस्था में शक्ति का वितरण अनेक प्रभावशाली देशों में होता है, जिनके हित, रणनीतियाँ और क्षेत्रीय प्राथमिकताएँ प्रायः परस्पर विरोधी होती हैं। ऐसी परिस्थितियों में अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के भीतर निर्णय–निर्माण प्रक्रिया जटिल और धीमी हो जाती है। सामूहिक सहमति विकसित करना कठिन होता है, क्योंकि प्रत्येक प्रमुख शक्ति निर्णय को अपने राष्ट्रीय हितों के संदर्भ में आंकती है। परिणामस्वरूप, कई बार संस्थाएँ प्रतीकात्मक वक्तव्यों तक सीमित रह जाती हैं और निर्णायक कार्रवाई करने में असफल रहती हैं।

इसके अतिरिक्त, अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं की संरचना स्वयं असंतुलन का संकेत देती है। निर्णय की शक्ति कुछ गिने–चुने देशों के पास केंद्रित होने से यह धारणा मजबूत होती है कि सामूहिक सुरक्षा का तंत्र सभी राष्ट्रों के लिए समान रूप से कार्य नहीं करता। यह स्थिति संस्थाओं की विश्वसनीयता को कमजोर करती है और विकासशील तथा कमजोर देशों में असंतोष को जन्म देती है।

बहुध्रुवीय दबाव का एक और महत्वपूर्ण पहलू यह है कि क्षेत्रीय संगठन और वैकल्पिक मंच अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के प्रभाव को चुनौती देने लगे हैं। कई संकटों में क्षेत्रीय गठबंधन अधिक सक्रिय भूमिका निभाते हैं, जबकि वैश्विक संस्थाएँ पीछे छूट जाती हैं। इससे सामूहिक सुरक्षा का केंद्रीय ढाँचा खंडित होता हुआ प्रतीत होता है।

इन सभी कारणों से यह स्पष्ट होता है कि बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था में अंतरराष्ट्रीय संस्थाएँ न तो अपने पारंपरिक स्वरूप में पूर्णतः प्रभावी रह सकती हैं और न ही सामूहिक सुरक्षा की अवधारणा को निर्विवाद रूप से लागू कर सकती हैं। इन संस्थाओं की भूमिका, संरचना और निर्णय–प्रक्रिया में गहन सुधार की आवश्यकता महसूस की जा रही है, ताकि वे बदलती वैश्विक वास्तविकताओं के अनुरूप स्वयं को ढाल सकें।

4 रूस–यूक्रेन संघर्षः सामूहिक सुरक्षा की संरचनात्मक परीक्षा

रूस–यूक्रेन संघर्ष बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था में सामूहिक सुरक्षा की वास्तविक स्थिति को समझने का एक महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह संघर्ष केवल दो राष्ट्रों के बीच क्षेत्रीय विवाद तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें व्यापक भू–राजनीतिक हित, शक्ति संतुलन और रणनीतिक गठबंधन प्रत्यक्ष रूप से संलग्न रहे हैं। इस कारण यह संकट अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा तंत्र की संरचनात्मक सीमाओं को उजागर करता है।
इस संघर्ष के दौरान यह स्पष्ट रूप से देखा गया कि सामूहिक सुरक्षा की संस्थागत व्यवस्था प्रभावी हस्तक्षेप करने में असमर्थ रही। निर्णय–प्रक्रिया पर प्रभावशाली शक्तियों के मतभेद और हितों की टकराहट ने सामूहिक प्रतिक्रिया को बाधित किया। जहाँ कुछ राष्ट्रों ने संघर्ष को अंतरराष्ट्रीय शांति के लिए गंभीर खतरा माना, वहीं अन्य देशों ने इसे क्षेत्रीय या रणनीतिक दृष्टि से परिभाषित किया। परिणामस्वरूप, साझा दृष्टिकोण का अभाव बना रहा।
रूस की भूमिका ने सामूहिक सुरक्षा की संरचना में निहित असमानता को विशेष रूप से उजागर किया। जब कोई संघर्ष ऐसा हो जिसमें एक प्रभावशाली शक्ति स्वयं शामिल हो, तब अंतरराष्ट्रीय संस्थाएँ निष्पक्ष और निर्णायक कार्रवाई करने में संकोच दिखाती हैं। यह स्थिति सामूहिक सुरक्षा की निष्पक्षता और प्रभावशीलता दोनों पर प्रश्नचिह्न लगाती है।
इसके अतिरिक्त, इस संघर्ष ने सैन्य गठबंधनों की बढ़ती भूमिका को भी रेखांकित किया। सामूहिक सुरक्षा के बजाय कई देशों की प्रतिक्रिया क्षेत्रीय अथवा रणनीतिक गठबंधनों के माध्यम से सामने आई, जिससे यह संकेत मिलता है कि वर्तमान वैश्विक व्यवस्था में सुरक्षा की प्राथमिकता साझा तंत्र के बजाय समूह–सापेक्ष हितों के अनुसार निर्धारित की जा रही है।
इस प्रकार रूस–यूक्रेन संघर्ष यह स्पष्ट करता है कि बहुध्रुवीय विश्व में सामूहिक सुरक्षा एक आदर्श के रूप में तो विद्यमान है, परंतु जब बात व्यवहारिक और संकट–आधारित निर्णयों की आती है, तब इसकी संरचनात्मक कमजोरियाँ खुलकर सामने आती हैं। यह संकट सामूहिक सुरक्षा के पुनर्मूल्यांकन और पुनर्संरचना की आवश्यकता को गंभीरता से रेखांकित करता है।

5 पश्चिम एशियाः स्थायी असुरक्षा और सामूहिक सुरक्षा की सीमाएँ

पश्चिम एशिया लंबे समय से अंतरराष्ट्रीय राजनीति में अस्थिरता और संघर्ष का केंद्र बना हुआ है। यह क्षेत्र न केवल भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि ऊर्जा संसाधनों, वैचारिक टकरावों और रणनीतिक मार्गों के कारण वैश्विक राजनीति में विशेष स्थान रखता है। इसी कारण यहाँ उत्पन्न होने वाले संकट सामूहिक सुरक्षा की अवधारणा के लिए निरंतर चुनौती प्रस्तुत करते रहे हैं।
पश्चिम एशिया में संघर्षों की प्रकृति अत्यंत जटिल रही है। यहाँ आंतरिक राजनीतिक असंतोष, क्षेत्रीय प्रतिद्वंद्विता और बाहरी शक्तियों की सक्रिय भूमिका एक साथ देखने को मिलती है। ऐसी परिस्थितियों में सामूहिक सुरक्षा का तंत्र स्पष्ट और निर्णायक कार्रवाई करने में असमर्थ प्रतीत होता है। अनेक अवसरों पर अंतरराष्ट्रीय प्रतिक्रिया खंडित रही है और अलग–अलग शक्तियाँ अपने–अपने हितों के अनुरूप रुख अपनाती रही हैं।
इस क्षेत्र में सामूहिक सुरक्षा की विफलता का एक प्रमुख कारण बाहरी हस्तक्षेपों की निरंतरता है। विभिन्न शक्तियों द्वारा समर्थित समूहों और प्रतिस्पर्धी रणनीतियों ने संघर्ष को सीमित करने के बजाय उसे और अधिक जटिल बना दिया है। परिणामस्वरूप, सामूहिक सुरक्षा की अवधारणा एक साझा उत्तरदायित्व के रूप में स्थापित होने के स्थान पर परस्पर विरोधी रणनीतियों में उलझ जाती है।
इसके अतिरिक्त, पश्चिम एशिया में लंबे समय तक चले संघर्षों ने यह भी दिखाया है कि सामूहिक सुरक्षा का तंत्र अक्सर संकट के निवारण के बजाय संकट–प्रबंधन तक सीमित रह जाता है। स्थायी शांति स्थापित करने हेतु आवश्यक राजनीतिक समाधान, संवाद और विश्वास–निर्माण के प्रयास अपेक्षित रूप से

विकसित नहीं हो पाते। इससे यह धारणा बनती है कि सामूहिक सुरक्षा तात्कालिक प्रतिक्रिया तो दे सकती है, परंतु दीर्घकालिक स्थिरता सुनिश्चित करने में असफल रहती है।
इस प्रकार पश्चिम एशिया की स्थिति यह स्पष्ट करती है कि बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था में सामूहिक सुरक्षा केवल संस्थागत व्यवस्था का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह क्षेत्रीय राजनीति, शक्ति संतुलन और बाहरी हस्तक्षेपों से गहराई से प्रभावित होती है। यह क्षेत्र सामूहिक सुरक्षा की सीमाओं को समझने के लिए एक स्थायी उदाहरण के रूप में उभरता है।

6 क्षेत्रीय सुरक्षा व्यवस्थाएँ बनाम वैश्विक सामूहिक सुरक्षा

बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था के विकास के साथ सुरक्षा की जिम्मेदारी केवल वैश्विक संस्थाओं तक सीमित नहीं रह गई है। अनेक क्षेत्रों में स्थानीय और क्षेत्रीय स्तर पर सुरक्षा व्यवस्थाएँ उभरकर सामने आई हैं, जो वैश्विक सामूहिक सुरक्षा के विकल्प या पूरक के रूप में कार्य कर रही हैं। यह प्रवृत्ति समकालीन अंतरराष्ट्रीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन को दर्शाती है।
क्षेत्रीय सुरक्षा व्यवस्थाओं की विशेषता यह है कि वे स्थानीय परिस्थितियों, सांस्कृतिक संदर्भों और क्षेत्रीय राजनीतिक वास्तविकताओं को बेहतर ढंग से समझती हैं। क्षेत्रीय संकटों के प्रति इनकी प्रतिक्रिया अपेक्षाकृत अधिक त्वरित और लक्षित होती है। इसके विपरीत, वैश्विक सामूहिक सुरक्षा तंत्र व्यापक सहमति पर आधारित होने के कारण अक्सर निर्णय लेने में विलंब करता है।
हालाँकि क्षेत्रीय सुरक्षा व्यवस्थाएँ प्रभावशीलता का आभास देती हैं, फिर भी उनकी अपनी सीमाएँ हैं। कई बार ये व्यवस्थाएँ विशेष समूहों या शक्तियों के हितों से संचालित हो जाती हैं, जिससे निष्पक्षता पर प्रश्न उठता है। इसके अतिरिक्त, क्षेत्रीय समाधान वैश्विक स्तर पर संघर्ष के दूरगामी प्रभावों को पूरी तरह संबोधित नहीं कर पाते।
दूसरी ओर, वैश्विक सामूहिक सुरक्षा तंत्र सैद्धांतिक रूप से व्यापक वैधता और अंतरराष्ट्रीय स्वीकार्यता प्रदान करता है। किंतु बहुध्रुवीय परिस्थिति में इसकी निष्पक्षता और प्रासंगिकता तब कमजोर पड़ जाती है, जब शक्तिशाली देश निर्णय–प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। परिणामस्वरूप, वैश्विक तंत्र और क्षेत्रीय व्यवस्थाओं के बीच समन्वय का अभाव दिखाई देता है।
इस तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान वैश्विक व्यवस्था में न तो केवल क्षेत्रीय सुरक्षा व्यवस्थाएँ पर्याप्त हैं और न ही पारंपरिक वैश्विक सामूहिक सुरक्षा। दोनों के बीच संतुलन, सहयोग और कार्य–विभाजन की आवश्यकता है। सामूहिक सुरक्षा की भविष्यगत प्रासंगिकता इसी समन्वय की सफलता पर निर्भर करती है।

7 सामूहिक सुरक्षा का नैतिक संकटः चयनात्मक हस्तक्षेप और दोहरे मानदंड

सामूहिक सुरक्षा की अवधारणा केवल एक रणनीतिक व्यवस्था नहीं है, बल्कि यह अंतरराष्ट्रीय राजनीति में नैतिक उत्तरदायित्व की भी प्रतिनिधि मानी जाती रही है। इसका मूल उद्देश्य यह रहा है कि वैश्विक शांति और मानवीय मूल्यों की रक्षा सभी राष्ट्रों की साझा जिम्मेदारी हो। किंतु समकालीन बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था में यह नैतिक आधार गंभीर संकट से जूझता हुआ प्रतीत होता है।
वास्तविकता यह है कि सामूहिक सुरक्षा की प्रतिक्रिया अक्सर चयनात्मक होती है। कुछ संघर्षों पर तीव्र अंतरराष्ट्रीय सक्रियता देखी जाती है, जबकि अन्य संकट लंबे समय तक उपेक्षा के शिकार बने रहते हैं। यह असमान व्यवहार इस धारणा को जन्म देता है कि मानवीय पीड़ा का मूल्यांकन नैतिक आधार पर नहीं, बल्कि रणनीतिक उपयोगिता के अनुसार किया जाता है। इससे सामूहिक सुरक्षा की नैतिक विश्वसनीयता कमजोर होती है।
इसके अतिरिक्त, दोहरे मानदंडों की समस्या सामूहिक सुरक्षा के नैतिक संकट को और गहरा करती है। जो कृत्य एक परिस्थिति में आक्रामकता माने जाते हैं, वही अन्य संदर्भों में वैध हस्तक्षेप के रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं। ऐसी व्याख्याएँ अंतरराष्ट्रीय कानून और नैतिकता की समानता की भावना को क्षीण करती हैं।
बहुध्रुवीय व्यवस्था में यह समस्या इसलिए भी बढ़ जाती है क्योंकि विभिन्न शक्तियाँ नैतिक मूल्यों की व्याख्या अपने हितों के अनुरूप करती हैं। परिणामस्वरूप, सामूहिक सुरक्षा एक सार्वभौमिक नैतिक सिद्धांत

के बजाय शक्ति–आधारित व्यवहार का उपकरण बन जाती है। यह स्थिति वैश्विक विश्वास को क्षति पहुँचाती है और अंतरराष्ट्रीय सहयोग की संभावनाओं को सीमित कर देती है।

इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि सामूहिक सुरक्षा का संकट केवल संस्थागत या संरचनात्मक नहीं है, बल्कि गहरे स्तर पर नैतिक भी है। जब तक इसकी प्रक्रिया समानता, निष्पक्षता और मानवीय मानकों पर आधारित नहीं होगी, तब तक बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था में इसकी प्रभावशीलता संदेह के दायरे में बनी रहेगी।

8 सामूहिक सुरक्षा के पुनर्गठन की संभावनाएँ

बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था में सामूहिक सुरक्षा की मौजूदा सीमाएँ यह संकेत देती हैं कि समस्या केवल इसके प्रयोग में नहीं, बल्कि इसके ढाँचे और दृष्टिकोण में भी निहित है। यदि सामूहिक सुरक्षा को वर्तमान वैश्विक यथार्थ में प्रासंगिक बनाए रखना है, तो इसके पुनर्गठन पर गंभीर विचार आवश्यक हो जाता है। यह पुनर्गठन किसी एक सुधार तक सीमित न होकर बहुआयामी होना चाहिए।

सबसे पहली आवश्यकता है निर्णय–प्रक्रिया को अधिक संतुलित और समावेशी बनाना। जब कुछ सीमित शक्तियाँ ही निर्णायक भूमिका निभाती हैं, तब सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धांत कमजोर पड़ता है। बहुध्रुवीय संदर्भ में सुरक्षा संबंधी निर्णयों में व्यापक सहभागिता न केवल वैधता बढ़ा सकती है, बल्कि विश्वास–निर्माण में भी सहायक हो सकती है।

दूसरी महत्वपूर्ण संभावना क्षेत्रीय और वैश्विक सुरक्षा तंत्रों के बीच बेहतर समन्वय की है। क्षेत्रीय संगठनों की स्थानीय समझ और वैश्विक संस्थाओं की वैधानिक क्षमता यदि एक–दूसरे की पूरक बन सकें, तो सामूहिक सुरक्षा अधिक प्रभावी रूप ले सकती है। इससे न तो वैश्विक तंत्र निष्क्रिय रहेगा और न ही क्षेत्रीय व्यवस्थाएँ एकांगी हो पाएँगी।

इसके अतिरिक्त, सामूहिक सुरक्षा के नैतिक आधार को भी पुनर्स्थापित करने की आवश्यकता है। समान मानदंडों, समान उत्तरदायित्व और मानवीय सरोकारों को प्राथमिकता दिए बिना कोई भी पुनर्गठित ढाँचा टिकाऊ नहीं हो सकता। यदि सुरक्षा तंत्र रणनीतिक हितों से ऊपर उठकर मानवीय मूल्यों को केंद्र में रखे, तभी वह विश्वसनीय बन सकता है।

अंततः, सामूहिक सुरक्षा का पुनर्गठन इसे कठोर और प्रतिक्रियात्मक व्यवस्था से हटाकर संवाद–आधारित, निवारक और अनुकूलनशील ढाँचे में बदलने की माँग करता है। बहुध्रुवीय विश्व की जटिलताओं के अनुरूप स्वयं को ढाल पाना ही इसकी भविष्यगत प्रासंगिकता का मूल आधार होगा।

9 निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था ने अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा की पारंपरिक अवधारणाओं को गहन चुनौती दी है, और सामूहिक सुरक्षा इस परिवर्तन से सबसे अधिक प्रभावित हुई अवधारणाओं में से एक है। वैश्विक शक्ति–संतुलन के विखंडन ने जहाँ एक ओर निर्णय–निर्माण की प्रक्रिया को अधिक जटिल बना दिया है, वहीं दूसरी ओर सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना को भी कमजोर किया है।

रूस–यूक्रेन संघर्ष और पश्चिम एशिया में जारी संकट यह दर्शाते हैं कि सामूहिक सुरक्षा का तंत्र वर्तमान स्वरूप में प्रभावी हस्तक्षेप करने में अक्सर असमर्थ रहता है। इन उदाहरणों से यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि जब राष्ट्रीय और रणनीतिक हित प्राथमिक बन जाते हैं, तब सामूहिक सुरक्षा नैतिक और व्यवहारिक दोनों स्तरों पर सीमित हो जाती है। चयनात्मक प्रतिक्रिया, निर्णय में विलंब और दोहरे मानदंड इसकी प्रमुख कमजोरियों के रूप में उभरते हैं।

फिर भी यह निष्कर्ष निकालना कि सामूहिक सुरक्षा पूरी तरह अप्रासंगिक हो चुकी है, उचित नहीं होगा। वास्तव में, इसकी मूल भावनाकृसाझा शांति, सहयोग और उत्तरदायित्वकृआज भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। समस्या इसके सिद्धांत में नहीं, बल्कि इसके ढाँचागत स्वरूप और कार्यान्वयन की पद्धति में निहित है। बहुध्रुवीय विश्व की जटिलताओं के अनुरूप इसकी पुनर्व्याख्या और पुनर्संरचना आवश्यक है।

अतः यह कहा जा सकता है कि सामूहिक सुरक्षा को स्थायी और प्रभावी बनाने के लिए उसे अधिक संतुलित, नैतिक रूप से सुसंगत और व्यवहारिक बनाया जाना चाहिए। केवल उसी स्थिति में यह अवधारणा बदलती वैश्विक परिस्थितियों में शांति और स्थिरता बनाए रखने में सार्थक भूमिका निभा सकेगी।